दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्त जीवन संघर्ष

डॉ. रमेश मनोहर लमाणी
At-Post-Siddapur (Shivnagar)
Taluka-Bilagi, Dist- Bagalkot
Pin-587117, State-Karnataka

भारतीय साहित्य में पहली बार मराठी में दलित साहित्य लिखा गया। बाद में अनुवाद के माध्यम से प्रेरणा लेकर हिन्दी भाषा के प्रदेशों में दलितों ने लिखना प्रारंभ किया। आज हिन्दी दलित साहित्य विभिन्न विधाओं में हमारे समक्ष है- कहानी, कविता, उपन्यास और आत्मकथा के रूप में सबसे पहले आत्मकथा लिखने की परंपरा मराठी साहित्य से शुरू हुई। आज हिन्दी में भी आत्मकथा सबसे सशक्त विधा के रूप में सामने आई है। दलित आत्मकथाओं ने दलित समुदाय के शोषण, अपमान, अवहेलन-तिरस्कार लिखकर पूरे समाज को यह बता दिया कि हमारा-जीवन जानने के लिए किसी रची हुई कहानी या आख्यान की जरूरत नहीं, स्वयं हमारे जीवन को देखना जरूरी है। जो प्रमुख आत्मकथा हिन्दी दलित साहित्य में आए हैं, वे इस प्रकार हैं- मोहनदास नैमिषराय की 'अपने अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', कोशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', सूरजपाले चौहान की 'तिरस्कृत', डॉ.डी.आर.जाटव की 'मेरा सफर मेरी मंजिल', माताप्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन, नरेंद्र महर्षी की 'मेरे मन की बाइबल', डॉ.श्योराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', प्रो. श्यामलाल की 'एक भंगी कुलपति की अनकही दास्तान', सुशीला चाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' और तुलसी राम की 'मुर्दहिया'। ये आत्मकथाएँ वेदना के गर्भ से जन्मी पुरानी सामाजिक संरचनाओं को अस्वीकार करती है। इन आत्मकथाओं के लेखकों ने पूरे समाज व्यवस्था पर तमाचा मारा है, इसलिए इनका अपना विशेष महत्व हैं। क्योंकि इन आत्मकथाओं में लेखकों के वास्तविक जीवन का कटु सत्य छिपा हुआ है।

इन आत्मकथाओं में लेखक महोदय ने स्वयं जीये हुए परिवेश का यथार्थ अंकन किया है। इन आत्मकथाओं में निहित मूल संवेदनाओं का पक्ष इतना प्रबल है कि सारी वास्तविकता आइने के समान साफ दिखाई देती है।

मोहनदास नैमिशराय ने 'अपने-अपने पिंजरे' में मेरठ जिले के चमारों की स्थिति और उनके जीवन को अंकित किया है। समाज में व्यक्ति का दर्जा और हैसियत उसकी जाति से तय की जाती है। लेखक ने इस समस्या से गुजरते हुए लिखा है- "हिन्दू समाज में आदमी की कीमत उसकी जात से आँकी जाती थी। हमें विशेष तौर पर – चमार- चूहडे नाम से संबोधित किया जाता है।" भारतीय जातिग्रस्त समाज में हर एक को सबसे पहले व्यक्ति की जाति के बारे में जानने की जिज्ञासा रहती है। दलित जानते ही सवर्ण उनसे मुँह मोड लेते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में दलितों की दयनीय स्थिति का चित्रण प्रस्तुत हुआ है। बरला गाँव के व्यक्तियों पर त्यागियों से होनेवाले अत्याचार का यथार्थ अंकन हुआ है। 'जूठन' में हर आदमी लेखक से पूछते है कि, "तू कूण जात का है। अबे चूहडे के दूर हठ बदबू आ रही है।" चूहडे जाति के कारण कुलकर्णी की बेटी सविता वाल्मीकि के प्रेम से मुँह मोड लेती है। सन् 1980 में जब पत्नी सहित वाल्मीकि जी रेल में सफर करते समय एक मंत्रालय के परिवार से परिचय हुआ और आत्मीयता भी बढ़ गयी। पर जैसे ही भंगी जात सुनते ही बिगड जाते है और डिब्बे में सन्नाटा छा जाता है।

सूरजपाल चौहान ने 'तिरस्कृत' आत्मकथा में ब्राह्मणवादी उत्पीडन के साथ- साथ अपने परिवार, रिश्तेदारी, दलित समाज द्वारा मिली मानसिक पीड़ा और तिरस्कार को उद्घाटित किया है। इस आत्मकथा द्वारा जाति का बीज़ कितना गहरा एवं भयानक होता है, इसका स्पष्ट रूप मिलता है। सूरजपाल चौहान अपने गाँव जा रहे थे तो बच्चे और पत्नी को प्यास लगी, कुएँ से पानी निकालकर पीने लगे तो जमीनदार दाँत पीसता हुआ बोला- "और भंगनिया, नेक पीछे कुहट के पानी पी, यहाँ शहर ना गाँव है, मारे लठिया के कमर तोड़ दई जाएगी.....भैंचे-भंगियों और चमट्टा के सहर में जाके नए-नए लत्ता पहन के गाँव में आ जाता है, कुछ पत्तो न चलतू कि जे भंगिया के है, कि नाँय।" इस प्रकार सूरजपाल चैहान के हर जगह सवर्णों के व्यवहार को झेलना पड़ा। उन्होंने भंगी होने का दर्द महसूस किया।

श्योराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' आत्मकथा में एक अस्पृश्य बालक का बचपन आसूँ, तकलीफ और संघर्ष से भरा है। बालक श्योराज सिंह के सर पर पिता का साया नहीं था। यहाँ कैसी नियती है कि हर्षमय और उल्लासमय बचपन की, स्मृतियों की जगह त्रासद स्मृतियों ने ले ली थी। ये स्मृतियाँ लेखक के मन पर अमीठ छाप छोड़ी हुई है। बालक श्योराज ने अपने परिवार को ढ़ोने के लिए अंधे बाबा के साथ कुट्टी काटने, मशीन खींचने तथा मृत पशु ढोने का काम किया। फिर भी परिवार की भूख को शांत करना असंभव था। वे लिखते हैं- "अभी तक प्राण निकले थे। रात को सब बस्ती सो रही थी और हम सब भूख के मारे व्याकुल थे। बब्बा ने अपने पास जमा आधा सेर चावल की गाँठ दी..... ताई ने चावल गरम कर दिये थे। नमक डालकर हमने

मथोडे-थोडे बाँट खाए।" जब माँ का पुर्नविवाह गरीब रामलाल से करवा दिया तो वह तीन सौतेले बच्चों का पालने में असमर्थ था। परिणाम स्वरूप श्योराज एवं भाई-बहनों को दोहरी मार झेलनी पड़ती थी। माता प्रसाद की 'झोंपड़ी से राजभवन तक' आत्मकथा स्वतंत्र भारत में जहाँ एक और दलित के राजभावन पहुँचने का यात्रा को रेखांकित करती है। वहीं स्वतंत्रता से पूर्व झेले गए अनेक संत्रास का उद्घाटन बडे शिद्दत के साथ करती है। इस समाज व्यवस्था में दलितों के बाल काटने के लिए हिन्दू नाई तौयार नहीं होते। "दसरे दिन बाज़ार में नाई की दुकान पर बाल बनवाने गया तो वह भी हिन्दू नाई था। उसने जब हमारी जाति जानी तो बाल बनाने से इनकार कर दिया।" दलित होने के नाते लेखक को इस घटना से काफी बुरा अनुभव होता है।

डॉ.डी.आर जाटव की 'मेरा सफर मेरी मंजिल' आत्मकथा में लेखक का जन्म एक जाट (चमार) परिवार में हुआ और बचपन में पिता का साथ उठ गया। घर में माँ, बहन, पत्नी और स्वयं अभाव और कष्टों के कंधे पर लादकर जीवन यात्रा बडे धैर्य व साहस से पार किया। लेखक कहते है- "अछूतों के रूप में मेरे पूर्वज निर्धनतम लोगों में भी निर्धन थे। उनके स्पर्श और छाया से समाज के उच्च जाति स्त्री-पुरूष अपवित्र हो जाते थे।" दलितों को मंदिर जाने से रोका जाता था। "गाँव में एक मंदिर था। इस मंदिर में दलित वर्ग के लोगों को जाने नहीं दिया जाता था। गाँव के मंदिर में स्थित भगवान की मूर्ति के दर्शन करने की दलित समाज के लोगों को मनाई थी। मंदिर में कभी-कभी कीर्तन हुआ करता था। इस कीर्तन में कोई साधु-महात्मा प्रवचन देते थे। इस प्रवचन को भी दलित समाज के लोग बहुत दूर से सुनते थे।"

सुशीला टाकभौरे जी की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' एक दलित नारी की दारूण यातना की कहानी नहीं, बल्कि उस वर्ण व्यवस्था के अमानवीय स्वरूप के रेशे-रेशे से पाठकों को परीचित कराती है। जिस व्यवस्था ने करोड़ों मनुष्यों की जिन्दगी में जहर घोल रखा है। ऊपर-ऊपर तो मानवतावाद और समता का सूरज चमकता दिखाई देता है। लेकिन थोडा सा कुरजते ही वर्ण श्रेष्ठता का लिजलिजा घृणास्पद दल-दल में इलक मारने लगता है। इस संबंध में सरजू प्रसाद मिश्र ने कहा है- लेखिका ने मुस्कुराहट की नकाब के तले छिपे नफरत भरे चेहरों की असलीयत को देखा है। सहते-सहते जब इंतिहा हो गयी तो इस दबी घुटी नारी ने अपनी खुदी बुलंद किया और फिर बाधाएँ जैसे काँपते हुए दूर भागने लगी।" यह आत्मकथा न केवल पुरूण सत्ता बल्कि समाज व्यवस्था के खोखलेपन पर तमाचा है। लेखिका ने अपनी पीड़ा समाज कल्याण की भावना से अभिव्यक्त किया है, और उसी में इसका मूल्यांकन चाहती है। वह कहती है- शिकंजे का दर्द का मूल्यांकन समीक्षक और आलोचक करेंगे। मेरा मूल्यांकन करेगा समाज जहाँ रहकर मैंने यह जीवन पाया है और अपने अनुभव और अनुभूतियों को इस तरह बताया है। शिकंजे का दर्द को निदान होना चाहिए। तभी शिकंजे का दर्द आत्मकथा लेखन सार्थक हो सकेगा।" इन लेखकों द्वारा भोगी हुई पीड़ा का सत्य इतना कटु होता है कि पाठक निरंतर सोच में पड जाता है। वह बार-बार सोचता है कि समाज ऐसा क्यों है? अंत में यह कह सकते हैं कि ये आत्मकथाएँ दलितों के लिए मात्र सीमित नहीं है, पिछडी हुई जितनी भी जातियाँ है उनके लिए सोचने पर मजबूर करती है। केवल मजबूर मात्र नहीं करती लडने का साहस भी देती है।

****

संदर्भ ग्रंथ-

1. अपने अपने पिंजरे- मोहनदास नैमिषराय
2. जूठन- ओमप्रकाश वाल्मीकि
3. तिरस्कृत- सूरजपाल चौहान
4. मेरा बचपन मेरे कंधों पर- श्योराज सिंह बेचैन
5. झोंपड़ी से राजभवन तक- माताप्रसाद
6. मेरा सफर मेरी मंजिल- डॉ.डी.आर जाटव
7. शिकंजे का दर्द- सुशीला टाकभौरे
8. अंतर्जाल